अखिल भारतीय वनवासी कल्याण आश्रम

केन्द्रीय कार्यकारीमंडल की बैठक दिनांक 24 फ़रवरी, 2019-सतना में पारित प्रस्ताव

प्रस्ताव संख्या: 11 वन अधिकार कानून के अंतर्गत दावे वाली वनभूमि के कब्जे हटाने के उच्चतम न्यायलय के निर्णय में सरकार तुरंत विधाई या न्यायिक हस्तक्षेप करे.

अनुसूचित जनजाति एवं अन्य परंपरागत वन-निवासी (परंपरागत वनाधिकारों की मान्यता) अधिनियम 2006, जो वनाधिकार कानून या FRA के नाम से प्रसिद्ध है, इन समुदायों के ऐतिहासिक अन्याय को दूर करने के लिए संसद ने 2006 में पारित किया था. जनजातियों की स्थिति में इसमें 13 दिसंबर 2005 या उसके पूर्व तक वनभूमि पर अपनी आजीविका हेतु काबिज व्यक्तिगत अधिकारों के पट्टे देने व वनभूमि पर सामुदायिक अधिकारों (CFR) को मान्य किए जाने का प्रावधान है. अन्य परंपरागत वन-निवासियों के लिए उनका वनों में तीन पीढ़ियों अर्थात उक्त तिथि को 75 वर्षों से बसे होने की शर्त है. इस विषय में वन विभाग/मंत्रालय के जनजातियों से तनावपूर्ण संबंधों के इतिहास के कारण इस कानून की क्रियान्विति - नोडल एजेंसी का दायित्व जनजाति मंत्रालय को दिया गया है.

उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार देशभर में 40.54 लाख व्यक्तिगत एवं 1.44 लाख सामुदायिक, कुल 41.98 लाख दावे पंजीकृत हुए. इनमे से 18.89 लाख व्यक्तिगत तथा 46,649 सामुदायिक, कुल 19.36 लाख अर्थात लगभग आधे दावे गलतढंग से निरस्त कर दिये गए. स्वीकृत दावों में से 17.97 व्यक्तिगत व 70,164 सामुदायिक, कुल 18.67 लाख पट्टे/मान्यता अधिकार आवंटित हुए. इस कानून के प्रावधान और जनजाति मंत्रालय की गाइडलाइन्स-निर्देश के अनुसार इन निरस्त दावों में से अधिकांश की समीक्षा, पुनर्विचार या अपील का कार्य अभी भी चल रहा है. सामुदायिक अधिकारों की मान्यता का कार्य तो 10% भी नहीं हुआ.

वन्यजीव पर काम करने वाले एक गैर-सरकारी संगठन ने वर्ष 2009 में इस कानून की वैधता को ही चुनौती देने की एक याचिका उच्चतम न्यायालय में दायर की जिसमे बाद में रिटायर्ड वन अधिकारीयों का समूह भी सम्मिलित होगया, यह जग जाहिर है कि ये सभी लोग प्रारंभ से ही इस कानून के विरुद्ध हैं.

13 फरवरी को इस मामले में अपने एक आदेश में मा. उच्चतम न्यायालय ने निरस्त दावों की वनभूमि के कब्जों को अब अवैध मानते हुए ऐसे कब्जों को हटाने का निर्देश दिया है. मीडिया में आए समाचारों के अनुसार इस मामले में जनजाति मंत्रालय को इसमें अभी तक पक्षकार नहीं बनाने से मामले के सारे तथ्य रिकॉर्ड पर नहीं आए, सरकारी वकील पिछली तीन सुनवाइयों में मूक दर्शक बने रहे और आखिरी सुनवाई के दिन तो उपस्थित ही नहीं थे (ऐसे ही समाचार उच्च शिक्षण संस्थाओं की फैकल्टी में आरक्षण की सुनवाई के समय भी आ चुके हैं).

इस आदेश से 21 राज्यों के 15 से 20 लाख परिवार अर्थात 1 करोड़ लोग प्रभावित होंगे जिनमे अधिकांश जनजाति समुदाय के हैं. आदेश के 2 सप्ताह बीत जाने के बाद भी अभी तक सरकार का इस पर कोई बयान नहीं आया. इन सब कारणों से जनजाति समाज में गुस्सा और चिंता व्याप्त है जो स्वाभाविक भी है.

न्यायपालिका के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए हम यह कहना चाहते हैं कि उच्चतम न्यायलय में सभी तथ्य नहीं आने से इस मामले में उसका आदेश न्यायपूर्ण होने की बजाय इस विषय पर सदियों से अन्याय झेल रहे जनजातियों के लिए अन्यायकारी हो गया है. सरकार न्यायालय में यह आंकड़े भी नहीं पेश कर पाई

कि इनमे कितने दावे जनजातियों के हैं और कितने अन्य वन-निवासियों के. कल्याण आश्रम का केन्द्रीय कार्यकारीमंडल इस सारी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति पर अपनी चिंता और क्षोभ व्यक्त करता है और जनजातियों को यह विश्वास दिलाता है कि इस चुनौतीपूर्ण घड़ी में वह उनके साथ पूरी शक्ति से खड़ा है.

इन सभी बातों पर विचार कर कल्याण आश्रम का केन्द्रीय कार्यकारी-मंडल मांग करता है कि:

1. केंद्र सरकार विधाई प्रक्रिया के अंतर्गत **अध्यादेश** या न्यायिक प्रक्रिया में पुनर्विचार याचिका के माध्यम से तुरंत हस्तक्षेप कर निरस्त मामलों की अपील सम्बन्धी न्यायिक प्रक्रिया पूर्ण नहीं होने तक 13 फ़रवरी के आदेश का स्टे सुनिश्चित करवाए, बाद में इसके स्थाई समाधान पर विचार किया जा सकता है.
2. जनजाति मंत्रालय, जो इस कानून के लिए घोषित नोडल एजेंसी है और जिसे सारे तथ्यों की जानकारी भी है, को न्यायालय में अपना पक्ष रखने के निर्देश दे,
3. इस प्रक्रिया में कुछ समय लगेगा, अतः केंद्र सरकार इस विषय पर तुरंत सामने आए और मीडिया में आरहे सारे मामले में स्थिति स्पष्ट करते हुए जनजाति एवं अन्य प्रभावित लोगों को आश्वस्त करे कि सरकार उनके साथ अन्याय नहीं होने देगी. अन्यथा देश में ऐसी शक्तियों की कमी नहीं है जो सरल जनजाति लोगों को ग़लत दिशा में ले जाने का प्रयास करेंगी.
4. केकामं राज्यों के मुख्य सचिवों/राज्य सरकारों से भी अनुरोध करती है कि वे अपने शपथ पत्रों में जो उच्चतम न्यायालय के निर्देशानुसार उन्हें 12 जुलाई तक पेश करने हैं, अपने राज्यों के जनजाति विभागों से जानकारी लेकर मामले की विस्तृत रिपोर्ट दे कि वस्तुस्थिति क्या है, ये मामले गाइडलाइन्स के अनुसार अपीलीय प्रक्रिया में होने के कारण इन कथित अवैध कब्जों नहीं हटाया गया या प्रक्रिया पूरी होने तक नहीं हटाया जा सकता. इस कानून को लागू करने की जिम्मेदारी राज्यों की है, केवल केंद्र सरकार को इसके लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता. वे भी इस मामले के सारे तथ्यों को न्यायालय में रखने में विफल रहे हैं.
5. केंद्र एवं राज्य सरकारें सभी लंबित दावों और सामुदायिक वनाधिकार के मामलों को जो अभी तक 10% भी मान्य नहीं हुए, द्रुतगति से निपटाए जैसा कि प्रधानमंत्रीजी भी कह चुके हैं कि यह काम 2020 तक पूरा हो जाना चाहिए.

   मार्च माह में देश में आम चुनावों की तिथियां घोषित होने वाली हैं, तब से मई-जून तक देश का सारा सरकारी तंत्र इन चुनावों में लगा रहेगा, इस अवधि में कब्ज़े हटाने का इतना बड़ा देशव्यापी अभियान नहीं चलाया जा सकता, ना ही चलाया जाना चाहिए. उच्चतम न्यायलय के आदेश की आड़ में वन विभाग इस प्रकार का कोई कदम उठाए भी (जैसा कि पूर्व के कुछ अनुभव बताते हैं) तो उसके प्रति सरकारों एवं समाज को न्यायिक प्रक्रिया की सीमा में रहते हुए सावधान रहने की आवश्यकता है.

   केकामं जनजातियों के सभी निर्वाचित जन प्रतिनिधियों, उनके बीच कार्यरत सामाजिक संस्थाओं, कल्याण आश्रम के कार्यकर्ताओं और जनजाति युवाओं का भी आह्वान करती है कि वे अपनी इस न्यायपूर्ण मांग के समर्थन में प्रभावित लोगों, विशेषकर जिनके दावे रद्द हुए हैं या जिनके दावे अभी लंबित हैं, को साथ लेकर केंद्र एवं राज्य सरकारों पर विधिसम्मत सभी तरीकों से दबाव डालें.